

रघुबर मंडल हरिहर मंडल

बनाम

बिहार राज्य

(भगवती, एस.के. दास और जे.एल. कपूर, न्यायमूर्तिगण)

विक्रय कर — करदाता के लेखे अविश्वसनीय होने के आधार पर अस्वीकृत — साक्ष्य या सामग्री के संदर्भ के बिना अनुमान द्वारा निर्धारण — वैधता — बिहार विक्रय कर अधिनियम, 1944 (बिहार अधिनियम VI / 1944), धारा 10(2)(बी) — भारतीय आयकर अधिनियम, 1922 (XI / 1922), धारा 23(3)

अपीलकर्ता ने बिहार विक्रय कर अधिनियम, 1944 के उपबंधों की अपेक्षानुसार आवश्यक विवरणियाँ दाखिल कीं और लेखा-पुस्तकें प्रस्तुत कीं। विक्रय कर अधिकारी ने यह विचार किया कि लेखा-पुस्तकें विश्वसनीय नहीं हैं और उन्हें तथा विवरणियों को अस्वीकार करने के पश्चात किसी भी साक्ष्य या सामग्री के संदर्भ के बिना, शुद्ध अनुमान से एक अंक अपनाकर, सकल कारोबार का आकलन करने में अग्रसर हुए और अधिनियम की धारा 10(2)(बी) के अधीन निर्धारण किया।

अभिनिर्धारित किया गया कि बिहार विक्रय कर अधिनियम, 1944 की धारा 10(2)(बी) के अधीन निर्धारण प्राधिकरण पर यह कर्तव्य अधिरोपित है कि वह करदाता द्वारा प्रस्तुत ऐसे साक्ष्य को और ऐसे अन्य साक्ष्य को, जो निर्धारण प्राधिकरण विनिर्दिष्ट बिंदुओं पर अपेक्षित कर सकता है, सुनने के पश्चात निर्धारण करे; और यदि करदाता की विवरणियाँ और उसकी लेखा-पुस्तकें अस्वीकार की जाती हैं तो निर्धारण प्राधिकरण को एक आकलन करना होगा, किन्तु यह आकलन ऐसे साक्ष्य या सामग्री पर आधारित होना चाहिए जो निर्धारण प्राधिकरण के समक्ष हो, जिसमें करदाता की परिस्थितियाँ, पूर्व विवरणियों का ज्ञान और वे सभी अन्य विषय सम्मिलित हैं जो निर्धारण प्राधिकरण को उचित और समुचित आकलन तक पहुँचने में सहायक होंगे।

ढाकेश्वरी कॉटन मिल्स लिमिटेड बनाम आयकर आयुक्त, पश्चिम बंगाल, (1955) 1 उ.च्.न्या.प्र. 941 और आयकर आयुक्त बनाम बद्रीदास रामराय शॉप, अकोला, (1937) एल.आर. 64 आई.ए. 102 — आश्रित।

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार: दीवानी अपील सं. 249/1954

पटना उच्च न्यायालय के दिनांक 8 जनवरी 1952 के 1949 की विविध न्यायिक मामला सं. 13, 14, 15, 16, 17, 18 और 19 में पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध विशेष अनुमति द्वारा अपील।

भवानी लाल और के.एल. मेहता, अपीलकर्ताओं की ओर से।

एल.के. झा, बी.के.पी. सिन्हा और आर.सी. प्रसाद, उत्तरदाता की ओर से।

1957, 22 मई। न्यायालय का निर्णय निम्नानुसार सुनाया गया —

एस.के. दास, न्या. — अपीलकर्ता मेसर्स रघुबर मंडल हरिहर मंडल, जिन्हें इसके बाद करदाता के रूप में संदर्भित किया जाएगा, बिहार राज्य के दरभंगा जिले में लहेरियासराय में अपना व्यापार करने वाले सराफा व्यापारियों की एक फर्म है। करदाता का विक्रय कर निर्धारण क्रमशः दिसंबर 31, 1945, मार्च 31, 1946, जून 30, 1956, सितंबर 30, 1946, दिसंबर 31, 1946, मार्च 31, 1947 और जून 30, 1947 को समाप्त होने वाली सात तिमाहियों के लिए किया गया था। उपर्युक्त तिमाहियों में से तीन के लिए, अर्थात् दिसंबर 31, 1945, मार्च 31, 1947 और जून 30, 1947 को समाप्त होने वाली तिमाहियों के लिए, करदाता बिहार विक्रय कर अधिनियम, 1944 (जिसे इसके आगे अधिनियम कहा जाएगा) के उपबंधों द्वारा अपेक्षित आवश्यक विवरणियाँ दाखिल करने में विफल रही, जो सारभूत अवधि के दौरान प्रवृत्त अधिनियम था; अतः करदाता का उन तीन तिमाहियों के लिए निर्धारण अधिनियम की धारा 10 की उप-धारा (4) के अधीन किया गया। शेष चार तिमाहियों के लिए करदाता ने विवरणियाँ दाखिल कीं। विक्रय कर अधिकारी ने उन विवरणियों को और साथ ही करदाता द्वारा सभी सात तिमाहियों के लिए दाखिल लेखा-पुस्तकों को भी अस्वीकार कर दिया और करदाता का निर्धारण अधिनियम की धारा 10 की उप-धारा (2) के खंड (बी) के अधीन किया। विक्रय कर अधिकारी ने दिनांक 9 अक्टूबर 1947 को सभी सात तिमाहियों के कर का निर्धारण एक साथ पृथक-पृथक आदेशों द्वारा किया। उन्होंने

दिसंबर 31, 1945, मार्च 31, 1946, सितंबर 30, 1946, दिसंबर 31, 1946 और मार्च 31, 1947 को समाप्त होने वाली पाँच तिमाहियों में से प्रत्येक के लिए रु. 2,94,000 के कर योग्य कारोबार पर कर का निर्धारण किया; जून 30, 1946 और जून 30, 1947 को समाप्त होने वाली अन्य दो तिमाहियों के लिए उन्होंने रु. 3,92,000 के कर योग्य कारोबार पर कर का निर्धारण किया। करदाता ने तब तिरहुत प्रमंडल के वाणिज्यिक कर आयुक्त के समक्ष अपील में आवेदन किया, किन्तु आयुक्त ने दिनांक 23 फरवरी 1948 के अपने आदेश द्वारा अपीलें खारिज कर दीं। तत्पश्चात राजस्व बोर्ड में पुनरीक्षण के लिए आवेदन किया गया, किन्तु बोर्ड ने दिनांक 31 जुलाई 1948 के अपने आदेश द्वारा हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया। बोर्ड ने यह मत व्यक्त किया कि विक्रय कर अधिकारी और आयुक्त का यह निष्कर्ष कि करदाता द्वारा रखी गई लेखा-पुस्तकें विश्वसनीय नहीं थीं, तथ्य का निष्कर्ष था जिसमें पुनरीक्षण में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता था; अतः निर्धारण अधिकारी अपने सर्वोत्तम निर्णय के आधार पर निर्धारण करने के लिए आबद्ध था। तत्पश्चात बोर्ड को अधिनियम की धारा 21 के अधीन पटना उच्च न्यायालय को कुछ विधि के प्रश्न निर्देशित करने के लिए आवेदन किया गया जो, करदाता ने तर्क दिया, उसके आदेश से उद्भूत होते थे। दिनांक 10 दिसंबर 1948 के अपने आदेश द्वारा बोर्ड ने उच्च न्यायालय को संदर्भ करने के आवेदनों को उसी आधार पर, अर्थात् कोई विधि का प्रश्न अंतर्निहित नहीं है और निर्धारण आदेश तथ्य के एकमत निष्कर्ष द्वारा अंतिम हो गए हैं, अस्वीकार कर दिया। करदाता ने तब उच्च न्यायालय में आवेदन किया और दिनांक 27 अप्रैल 1949 को 1949 की विविध न्यायिक मामला सं. 13 से 19 में पारित अपने आदेश द्वारा उच्च न्यायालय ने राजस्व बोर्ड को निम्नलिखित प्रश्न पर एक मामला विवरण करने और उच्च न्यायालय को निर्देशित करने का आदेश दिया:

"क्या विक्रय कर अधिकारी अधिनियम की धारा 10(2)(बी) के अधीन उस अंक को अपनाने का कोई आधार दिए बिना सकल कारोबार के किसी भी अंक पर निर्धारण करने का अधिकार रखता है?"

राजस्व बोर्ड ने तब एक मामला विवरण किया और उच्च न्यायालय ने दिनांक 8 जनवरी 1952 के अपने निर्णय और आदेश द्वारा प्रश्न का सकारात्मक उत्तर देते हुए संदर्भ का निपटारा किया। करदाता ने तब इस न्यायालय में आवेदन किया और उच्च न्यायालय के उक्त निर्णय और आदेश से अपील करने की विशेष अनुमति प्राप्त की।

करदाता का मुख्य तर्क यह है कि उच्च न्यायालय ने उसे निर्देशित विधि के प्रश्न का सही उत्तर नहीं दिया है। करदाता के इस तर्क पर विचार करने से पूर्व, उच्च न्यायालय को निर्देशित प्रश्न के सटीक क्षेत्र का परिसीमन करके आधार तैयार करना आवश्यक है। यह सुस्थापित है कि आयकर संदर्भों के विषय में उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार एक सलाहकार क्षेत्राधिकार है और आयकर अधिनियम के अधीन अधिकरण का तथ्यों पर निर्णय अंतिम होता है, जब तक कि उसे इस आधार पर सफलतापूर्वक आक्षेपित न किया जा सके कि अधिकरण द्वारा अभिलिखित तथ्यों पर निष्कर्ष के लिए कोई साक्ष्य नहीं था या निष्कर्ष ऐसा था जिस पर कोई भी उचित व्यक्ति-समूह नहीं पहुँच सकता था। यह भी सुस्थापित है कि उच्च न्यायालय का कर्तव्य मामले के विवरण को तथ्यों के अंतिम विवरण के रूप में मानकर चलना और उस विवरण के संदर्भ में विधि के प्रश्न का उत्तर देना है। भारतीय आयकर अधिनियम के उपबंध विचाराधीन अधिनियम के उपबंधों के साथ *समान विषय-वस्तु से संबंधित* हैं, दोनों अधिनियमों के सुसंगत उपबंधों की मुख्य योजना प्रकृति में समान है, यद्यपि उपबंधों के शब्द ठीक एक जैसे नहीं हैं। अधिनियम की धारा 21 के अधीन उच्च न्यायालय एक समान सलाहकार क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है, और उस धारा की उप-धारा (3) के अधीन उच्च न्यायालय राजस्व बोर्ड को एक मामला विवरण

करने और उसे उच्च न्यायालय को निर्देशित करने के लिए कह सकता है, जब उच्च न्यायालय संतुष्ट हो कि उप-धारा (2) के अधीन उच्च न्यायालय को संदर्भ करने से बोर्ड का इनकार उचित नहीं है। धारा 21 की उप-धारा (5) के अधीन उच्च न्यायालय संदर्भ की सुनवाई करता है और उसे निर्देशित विधि के प्रश्न का निर्णय अपने निर्णय में कारणों का उल्लेख करते हुए करता है। विचाराधीन मामले में, उच्च न्यायालय को निर्देशित प्रश्न अधिनियम की धारा 10(2)(बी) के अधीन किए गए निर्धारणों से संबंधित था; दूसरे शब्दों में, प्रश्न केवल उन चार तिमाहियों से संबंधित था जिनके लिए धारा 10(2)(बी) के अधीन निर्धारण किए गए थे। प्रश्न उन तीन तिमाहियों से संबंधित नहीं था जिनके लिए करदाता ने कोई विवरणी दाखिल नहीं की थी और धारा 10(4) के अधीन निर्धारण किए गए थे। अपने निर्णय में एक स्थान पर उच्च न्यायालय ने प्रश्न के तैयार करने में एक मामूली असंगति का उल्लेख किया, किन्तु उसने उन तीन तिमाहियों को, जिनके लिए अधिनियम की धारा 10(4) के अधीन निर्धारण किए गए थे, सम्मिलित करने के लिए उसका क्षेत्र विस्तृत करने हेतु प्रश्न का पुनः निर्माण नहीं किया। प्रश्न, जैसा वह था और जैसा उच्च न्यायालय ने उसका उत्तर दिया, अधिनियम की धारा 10(4) के अधीन किए गए निर्धारणों की समुचितता या वैधता से संबंधित नहीं था। इसलिए हमें प्रारंभ में ही यह स्पष्ट करना होगा कि प्रश्न केवल उन चार तिमाहियों से संबंधित है जिनके लिए अधिनियम की धारा 10(2)(बी) के अधीन निर्धारण किए गए थे, और प्रश्न का दिया गया उत्तर केवल उन चार तिमाहियों पर ही लागू होगा।

इस प्रकार उच्च न्यायालय को निर्देशित प्रश्न के सटीक क्षेत्र का संकेत करने के पश्चात्, हम अब करदाता के मुख्य तर्क पर विचार करने के लिए अग्रसर होते हैं। हमें पहले उन विधिक उपबंधों को पढ़ना होगा जिनके अधीन निर्धारण किए गए थे। अधिनियम की धारा 10 की उप-धारा (1) यह कहती है कि यदि आयुक्त किसी पंजीकृत व्यापारी की उपस्थिति की अपेक्षा किए

बिना या उसके द्वारा किसी साक्ष्य के उत्पादन के बिना संतुष्ट हो कि किसी अवधि के संबंध में प्रस्तुत विवरणियाँ सही और पूर्ण हैं, तो वह ऐसी विवरणियों के आधार पर व्यापारी से देय कर की राशि का निर्धारण करेगा। उप-धारा (2) का खंड (a) यह बताता है कि आयुक्त क्या करेगा, यदि वह उस पंजीकृत व्यापारी की उपस्थिति की अपेक्षा किए बिना जिसने विवरणियाँ प्रस्तुत की हों या साक्ष्य के उत्पादन के बिना संतुष्ट नहीं हो कि किसी अवधि के संबंध में प्रस्तुत विवरणियाँ सही और पूर्ण हैं; खंड यह कहता है कि उस स्थिति में आयुक्त व्यापारी को विहित रीति में एक सूचना देगा जिसमें उससे या तो स्वयं उपस्थित होने या अपनी विवरणियों के समर्थन में जिस साक्ष्य पर वह निर्भर हो उसे प्रस्तुत या प्रस्तुत करवाने की अपेक्षा की जाएगी। फिर उप-धारा (2) का खंड (बी) आता है जिसे विस्तारपूर्वक उद्धृत किया जाना चाहिए:

"(बी) सूचना में विनिर्दिष्ट दिन को या जितनी जल्दी हो सके उसके बाद, आयुक्त, व्यापारी द्वारा प्रस्तुत ऐसे साक्ष्य को सुनने के पश्चात और ऐसे अन्य साक्ष्य को जो आयुक्त विनिर्दिष्ट बिंदुओं पर अपेक्षित कर सकता है, व्यापारी से देय कर की राशि का निर्धारण करेगा।"

ये उपबंध भारतीय आयकर अधिनियम की धारा 23 में निहित उपबंधों के समान हैं। अधिनियम की धारा 10 की उप-धारा (1) भारतीय आयकर अधिनियम की धारा 23 की उप-धारा (1) के अनुरूप है; अधिनियम की धारा 10 की उप-धारा (2) का खंड (a) भारतीय आयकर अधिनियम की धारा 23 की उप-धारा (2) के अनुरूप है; और अधिनियम की धारा 10 की उप-धारा (2) का खंड (बी) भारतीय आयकर अधिनियम की धारा 23 की उप-धारा (3) के अनुरूप है, यद्यपि दोनों उपबंधों में कुछ शाब्दिक अंतर हैं। भारतीय आयकर अधिनियम की धारा 23 की उप-धारा (3) आयकर अधिकारी से अपेक्षा करती है कि वह "लिखित आदेश द्वारा" ऐसे निर्धारण के आधार पर करदाता की कुल आय का निर्धारण करे और उसके द्वारा देय राशि निर्धारित करे; किन्तु अधिनियम की धारा 10 की उप-धारा (2) का खंड (बी) आयुक्त से अपेक्षा करता है कि

वह व्यापारी से देय कर की राशि का निर्धारण करे और "लिखित आदेश" के संबंध में कोई दायित्व नहीं लगाता। इन अंतरों के बावजूद, दोनों उपबंध मूलतः एक ही हैं और निर्धारण प्राधिकरण पर व्यापारी द्वारा प्रस्तुत ऐसे साक्ष्य और ऐसे अन्य साक्ष्य, जो निर्धारण प्राधिकरण विनिर्दिष्ट बिंदुओं पर अपेक्षित कर सकता है, को सुनने के पश्चात कर का निर्धारण करने का कर्तव्य अधिरोपित करते हैं।

हमारे विचार का बिंदु यह है — क्या निर्धारण प्राधिकरण, अधिनियम की धारा 10(2) (बी) के अधीन कार्य करने का दिखावा करते हुए, किसी भी सामग्री पर बिना निर्धारण आधारित किए किसी व्यापारी से देय कर की राशि का कमोबेश मनमाने ढंग से निर्धारण कर सकता है? उच्च न्यायालय को निर्देशित प्रश्न में प्रयुक्त अभिव्यक्ति यह है, "उस अंक को अपनाने का कोई आधार दिए बिना सकल कारोबार के किसी भी अंक पर निर्धारण करना।" यह अभिव्यक्ति शायद थोड़ी अस्पष्ट है, किन्तु मामले के विवरण के संदर्भ में पढ़े जाने पर, प्रश्न का केवल यही अर्थ हो सकता है: क्या निर्धारण प्राधिकरण शुद्ध अनुमान से और बिना किसी सामग्री का संदर्भ किए, जिस पर अंक आधारित है, सकल कारोबार का एक अंक अपना सकता है? हमें यह स्पष्ट है कि उस अर्थ में समझे जाने पर, उच्च न्यायालय ने प्रश्न का गलत उत्तर दिया है। उच्च न्यायालय ने अधिनियम की धारा 10 की उप-धारा (4) और उप-धारा (2) के खंड (बी) की तुलना और वैषम्य के रूप में विस्तृत विचार किया। हमारे लिए इस अपील में अधिनियम की धारा 10 की उप-धारा (4) के सटीक क्षेत्र के संबंध में, जो भारतीय आयकर अधिनियम की धारा 23 की उप-धारा (4) के कमोबेश अनुरूप है, कोई मत व्यक्त करना अनावश्यक है; न ही यह तय करना आवश्यक है कि अधिनियम की धारा 10 की उप-धारा (2) के खंड (बी) के अधीन किया गया निर्धारण, जब करदाता की लेखा-पुस्तकें अविश्वसनीय मानी गई हों, धारा 10 की उप-धारा (4) के अधीन उस निर्धारण के ठीक समान आधार पर है जब करदाता अपनी विवरणियाँ दाखिल

करने में विफल रहा हो। भारतीय आयकर अधिनियम के तद्रूपी उपबंधों से संबंधित कुछ निर्णयों में यह कहा गया है कि दोनों के बीच अंतर केवल मात्रा का है, एक दूसरे की तुलना में अधिक संक्षिप्त है। ये ऐसे प्रश्न हैं जो वास्तव में वर्तमान अपील में निर्णय के लिए नहीं आते, जो अधिनियम की धारा 10 की उप-धारा (2) के खंड (बी) की वास्तविक प्रकृति और क्षेत्र की व्याख्या तक ही सीमित है। भारतीय आयकर अधिनियम की धारा 23 की उप-धारा (3) के तद्रूपी उपबंध के संबंध में इस न्यायालय का एक निर्णय है जो हमारे मत में हमारे समक्ष प्रश्न का उत्तर देता है। वह निर्णय *ढाकेश्वरी कॉटन मिल्स लिमिटेड बनाम आयकर आयुक्त, पश्चिम बंगाल* का है। इस न्यायालय ने अभिमत व्यक्त किया:

"द्वितीय तर्क के संबंध में, हम विद्वान महाधिवक्ता से पूर्णतः सहमत हैं जब वे कहते हैं कि आयकर अधिकारी साक्ष्य और अभिवचन के तकनीकी नियमों से आबद्ध नहीं है, और वह ऐसी सामग्री पर कार्य करने का अधिकारी है जिसे विधि के न्यायालय में साक्ष्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता, किन्तु यहीं पर सहमति समाप्त होती है; क्योंकि यह उतना ही स्पष्ट है कि अधिनियम की धारा 23 की उप-धारा (3) के अधीन निर्धारण करते समय आयकर अधिकारी किसी भी साक्ष्य या किसी भी सामग्री के बिना शुद्ध अनुमान लगाने और निर्धारण करने का अधिकारी नहीं है। धारा 23(3) के अधीन निर्धारण का समर्थन करने के लिए मात्र संदेह से अधिक कुछ होना चाहिए।"

हमारे मत में, उपर्युक्त अभिमत स्पष्टतः दर्शाते हैं कि उच्च न्यायालय ने प्रश्न का सकारात्मक उत्तर देने में त्रुटि की। प्रथमतः उच्च न्यायालय ने उसे निर्देशित प्रश्न को तथ्य का शुद्ध प्रश्न मानकर चला; यदि ऐसा होता, तो उच्च न्यायालय को इस आधार पर संदर्भ अस्वीकार कर देना चाहिए था कि वह तथ्य के प्रश्न का उत्तर देने में सक्षम नहीं है। तत्पश्चात् उच्च न्यायालय ने भारतीय आयकर अधिनियम की धारा 23 की उप-धाराओं (3) और (4) की

व्याख्या से संबंधित कुछ निर्णयों पर विचार करने में अग्रसर हुआ और अभिनिर्धारित किया कि धारा 23 की उप-धारा (3) के अधीन और उप-धारा (4) के अधीन निर्धारण के बीच कोई अंतर नहीं है। उच्च न्यायालय ने वही सादृश्य लागू किया और उस आधार पर अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम की धारा 10 की उप-धारा (2) के खंड (बी) के अधीन और उप-धारा (4) के अधीन निर्धारण के बीच कोई अंतर न होने से, प्रश्न का उत्तर सकारात्मक होना चाहिए। हमारे मत में, उसे निर्देशित प्रश्न पर उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण त्रुटिपूर्ण था और उसके द्वारा अधिनियम की धारा 10 की उप-धारा (4) के आधार पर ही प्रश्न का दिया गया उत्तर उस गलत दृष्टिकोण से दूषित था। अधिनियम की धारा 10 की उप-धारा (4) वह नहीं थी जिस पर उच्च न्यायालय को विचार करना था; उसे अधिनियम की धारा 10 की उप-धारा (2) के खंड (बी) के वास्तविक क्षेत्र और प्रभाव पर विचार करना था।

उत्तरदाता के विद्वान अधिवक्ता ने उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए उत्तर के समर्थन में दो बिंदुओं पर बलपूर्वक तर्क दिया। प्रथमतः उन्होंने तर्क दिया कि निर्धारण आदेशों और आयुक्त के आदेशों का उचित वाचन करने पर प्रतीत होता है कि विचाराधीन तिमाहियों के लिए सकल कारोबार कुछ सामग्री पर आधारित था; अतः विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि यह कहना सही नहीं है कि सकल कारोबार का अंक मनमाने ढंग से अपनाया गया था या बिना किसी साक्ष्य या किसी सामग्री के संदर्भ के अपनाया गया था। हमने विचाराधीन निर्धारण आदेशों की, जो मामले के विवरण का भाग हैं, परीक्षा की है। यह हमें स्पष्ट है कि विक्रय कर अधिकारी और आयुक्त ने क्या किया — उन्होंने कुछ कारणों से अभिनिर्धारित किया कि करदाता द्वारा दाखिल विवरणियाँ और उसके द्वारा दाखिल लेखा-पुस्तकें गलत और अविश्वसनीय थीं। उन कारणों को दोहराना आवश्यक नहीं है, क्योंकि हमें निर्धारण प्राधिकरणों द्वारा पहुँचे तथ्य के निष्कर्ष को स्वीकार करना होगा कि विवरणियाँ और लेखा-पुस्तकें विश्वसनीय नहीं थीं। निर्धारण प्राधिकरणों ने उचित

रूप से बताया कि कई लेनदेन लेखा-पुस्तकों में दर्ज नहीं किए गए थे; और 15 जुलाई 1947 को की गई एक आकस्मिक जाँच ने मेसर्स किशुनदास लेखराज के नाम से ज्ञात एक बॉम्बे फर्म के साथ कुछ लेनदेन प्रकट किए जो लेखा-पुस्तकों में उल्लिखित नहीं थे; और अंत में, करदाता लेनदेनों के विवरण को दबाने के लिए पाँच सहयोगियों के नाम पर चाँदी का आयात कर रहा था। निर्धारणउत्तरदाता के विद्वान अधिवक्ता ने उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए उत्तर के समर्थन में दो बिंदुओं पर बलपूर्वक तर्क दिया। प्रथमतः उन्होंने तर्क दिया कि निर्धारण आदेशों और आयुक्त के आदेशों का उचित वाचन करने पर प्रतीत होता है कि विचाराधीन तिमाहियों के लिए सकल कारोबार कुछ सामग्री पर आधारित था; अतः विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि यह कहना सही नहीं है कि सकल कारोबार का अंक मनमाने ढंग से अपनाया गया था या बिना किसी साक्ष्य या किसी सामग्री के संदर्भ के अपनाया गया था। हमने विचाराधीन निर्धारण आदेशों की, जो मामले के विवरण का भाग हैं, परीक्षा की है। यह हमें स्पष्ट है कि विक्रय कर अधिकारी और आयुक्त ने क्या किया — उन्होंने कुछ कारणों से अभিনিर्धारित किया कि करदाता द्वारा दाखिल विवरणियाँ और उसके द्वारा दाखिल लेखा-पुस्तकें गलत और अविश्वसनीय थीं। उन कारणों को दोहराना आवश्यक नहीं है, क्योंकि हमें निर्धारण प्राधिकरणों द्वारा पहुँचे तथ्य के निष्कर्ष को स्वीकार करना होगा कि विवरणियाँ और लेखा-पुस्तकें विश्वसनीय नहीं थीं। निर्धारण प्राधिकरणों ने उचित रूप से बताया कि कई लेनदेन लेखा-पुस्तकों में दर्ज नहीं किए गए थे; और 15 जुलाई 1947 को की गई एक आकस्मिक जाँच ने मेसर्स किशुनदास लेखराज के नाम से ज्ञात एक बॉम्बे फर्म के साथ कुछ लेनदेन प्रकट किए जो लेखा-पुस्तकों में उल्लिखित नहीं थे; और अंत में, करदाता लेनदेनों के विवरण को दबाने के लिए पाँच सहयोगियों के नाम पर चाँदी का आयात कर रहा था। निर्धारण प्राधिकरणों ने आगे बताया कि जून 30, 1946 को समाप्त होने वाली तिमाही के लिए दाखिल विवरणी और उसके समर्थन में दाखिल लेखे के बीच असंगति थी; विवरणी ने रु.

2,28,370-12-0 का सकल कारोबार दर्शाया, जबकि लेखे ने रु. 1,48,204 का सकल कारोबार प्रकट किया। इन सभी को हमें सही मानना होगा। विवरणियों और लेखा-पुस्तकों को अस्वीकार करने के पश्चात, निर्धारण प्राधिकरण सकल कारोबार का आकलन करने में अग्रसर हुए। सकल कारोबार का इस प्रकार आकलन करते समय, उन्होंने किसी भी सामग्री का बिल्कुल संदर्भ नहीं किया। इसके विपरीत, उन्होंने शुद्ध अनुमान का सहारा लिया और बिना किसी साक्ष्य या किसी सामग्री के संदर्भ के एक अंक अपना लिया। उदाहरण के लिए जून 30, 1946 को समाप्त होने वाली तिमाही का निर्धारण आदेश लें। विक्रय कर अधिकारी ने कहा: "मैं व्यापारी के लेखे अस्वीकार करता हूँ और रु. 4,00,000 का सकल कारोबार आकलित करता हूँ। मैं कारोबार पर 2% की कटौती की अनुमति देता हूँ और रु. 3,92,000 पर रु. 6,125 का विक्रय कर देने के लिए उसका निर्धारण करता हूँ।" सितंबर 30, 1946 को समाप्त होने वाली तिमाही के लिए विक्रय कर अधिकारी ने कहा: "मैं उसके अनियमित लेखे अस्वीकार करता हूँ और तिमाही के लिए रु. 3,00,000 का सकल कारोबार आकलित करता हूँ और रु. 4,593-12-0 का कर देने के लिए उसका रु. 2,94,000 पर निर्धारण करता हूँ।" ये और इसी प्रकार के आदेश यह नहीं दर्शाते कि निर्धारण किसी साक्ष्य या सामग्री के संदर्भ में किया गया था; इसके विपरीत, वे दर्शाते हैं कि लेखा-पुस्तकों को अस्वीकार करने के पश्चात, निर्धारण प्राधिकरणों ने शुद्ध अनुमान में लिप्त हुए और बिना किसी साक्ष्य या किसी सामग्री के संदर्भ के निर्धारण किया। यह निर्धारण प्राधिकरण अधिनियम की धारा 10 की उप-धारा (2) के खंड (बी) के अधीन करने के अधिकारी नहीं थे।

द्वितीयतः उत्तरदाता के विद्वान अधिवक्ता ने हमें उन कई निर्णयों का संदर्भ दिलाया जिन पर उच्च न्यायालय ने आश्रय लिया और तर्क दिया कि उन निर्णयों के आधार पर यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि उसे निर्देशित प्रश्न का उच्च न्यायालय द्वारा दिया गया उत्तर सही था। हम उन निर्णयों में से कुछ की संक्षेप में परीक्षा करना चाहते हैं, यद्यपि, जैसा

हमने पहले कहा है, प्रश्न का उत्तर वास्तव में *ढाकेश्वरी कॉटन मिल्स' मामले* में इस न्यायालय द्वारा व्यक्त अभिमतों द्वारा दे दिया गया है। प्रथम निर्णय प्रिवी काउंसिल का *आयकर आयुक्त बनाम बद्रीदास रामराय शॉप, अकोला* (2) का निर्णय है। लॉर्ड रसेल ऑफ किलोवेन ने उनके महाशयों का निर्णय सुनाते हुए भारतीय आयकर अधिनियम की धारा 23(4) के अर्थ में "सर्वोत्तम निर्णय" निर्धारण के संबंध में निम्नलिखित अभिमत व्यक्त किए:

"अधिकारी को उस व्यक्ति के विरुद्ध, जो सूचना प्रदान करने में चूक में है, अपने सर्वोत्तम निर्णय से निर्धारण करना है। उसे बेईमानी से, या प्रतिशोधपूर्वक या मनमाने ढंग से कार्य नहीं करना चाहिए, क्योंकि उसे इस विषय में निर्णय का प्रयोग करना होगा। उसे निर्धारण के उचित अंक का जो वह ईमानदारी से उचित आकलन मानता हो, वह करना होगा, और इस प्रयोजन के लिए उसे, उनके महाशयों का विचार है, करदाता की परिस्थितियों के संबंध में स्थानीय ज्ञान और प्रतिष्ठा और करदाता द्वारा पूर्व विवरणियों और करदाता के निर्धारणों के अपने ज्ञान तथा उन सभी अन्य विषयों को, जो उसे उचित और समुचित आकलन तक पहुँचने में सहायक होंगे, ध्यान में लेने में सक्षम होना चाहिए: और यद्यपि इस विषय में आवश्यक रूप से अनुमान का तत्व होना चाहिए, यह ईमानदार अनुमान-कार्य होना चाहिए।"

हम उन अभिमतों में ऐसा कुछ नहीं पाते जो *ढाकेश्वरी कॉटन मिल्स' मामले* (1) में व्यक्त अभिमतों के विरुद्ध हो। निस्संदेह यह सत्य है कि जब विवरणियाँ और लेखा-पुस्तकें अस्वीकार की जाती हैं, तो निर्धारण अधिकारी को एक आकलन करना होगा, और उस सीमा तक उसे एक अनुमान लगाना होगा; किन्तु आकलन किसी साक्ष्य या सामग्री से संबंधित होना चाहिए और यह मात्र संदेह से अधिक होना चाहिए। लॉर्ड रसेल ऑफ किलोवेन के शब्दों में फिर से कहें तो, "उसे निर्धारण के उचित अंक का जो वह ईमानदारी से उचित आकलन मानता हो, वह करना होगा" और इस प्रयोजन के लिए उसे ऐसी सामग्री को ध्यान में लेना होगा जो निर्धारण

अधिकारी के समक्ष हो, जिसमें करदाता की परिस्थितियाँ, पूर्व विवरणियों का ज्ञान और वे सभी अन्य विषय सम्मिलित हैं जो निर्धारण अधिकारी को उचित और समुचित आकलन तक पहुँचने में सहायक होंगे। विचाराधीन मामले में, निर्धारण अधिकारी ने ऐसा नहीं किया, और यहीं पर करदाता की शिकायत उत्पन्न होती है।

अगला निर्णय *गंगा राम बाल मोकंद बनाम आयकर आयुक्त, पंजाब* (2) का है। उसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि जहाँ आयकर प्राधिकरण करदाता के लेखों की सत्यता या पूर्णता से संतुष्ट नहीं थे और, सामान्य परिस्थितियों तथा इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि करदाता का बड़ा व्यापार था और उनके द्वारा दर्शाया गया लाभ उसी स्थान पर वही व्यापार करने वाले अन्य व्यक्तियों की तुलना में असामान्य रूप से कम था, 7 प्रतिशत की एक समान दर लागू करके कर योग्य आय की गणना की, तो प्राधिकरण ऐसी एक समान दर लागू करने में उचित थे और आकलन को विस्थापित करने का भार करदाता पर था। वहाँ भी, किया गया आकलन शुद्ध अनुमान नहीं था और कुछ सामग्री पर आधारित था जो आयकर अधिकारी के समक्ष थी। दिन मोहम्मद न्या., जिन्होंने मुख्य निर्णय दिया, ने अभिमत व्यक्त किया: "यह नहीं माना जा सकता कि आयकर अधिकारी के समक्ष कुछ सामग्री होनी चाहिए जिस पर वह अपना आकलन आधारित कर सके, किन्तु न्यायालय द्वारा कोई कठोर और अटल नियम यह परिभाषित करने के लिए नहीं बनाया जा सकता कि उसका आकलन किस प्रकार की सामग्री पर आधारित हो सकता है।" उस अभिमत से हम सामान्यतः सहमत हैं। यदि इस मामले में, विक्रय कर प्राधिकरणों ने अपना आकलन उनके समक्ष किसी सामग्री पर आधारित किया होता, तो कोई आपत्ति नहीं की जा सकती थी; किन्तु वह प्रश्न जो उच्च न्यायालय को निर्देशित किया गया था और जो निर्धारण के आदेशों से उद्भूत हुआ था, यह था कि क्या उक्त प्राधिकरणों के लिए उस अंक को अपनाने को न्यायोचित ठहराने वाली किसी सामग्री का संदर्भ किए बिना सकल कारोबार

के किसी अंक पर निर्धारण करना खुला था। उस प्रश्न का सकारात्मक उत्तर देकर, उच्च न्यायालय ने विक्रय कर प्राधिकरणों को *कार्ते ब्लान्श (निरंकुश विवेकाधिकार)* दे दी और हमारे मत में, अधिनियम की धारा 10 की उप-धारा (2) के खंड (बी) के वास्तविक क्षेत्र और प्रभाव के संबंध में स्वयं को गलत मार्गदर्शन किया।

अगला निर्णय *गुंडा सुब्बय्या बनाम आयकर आयुक्त, मद्रास* (1) का है। यह निर्णय भी उत्तरदाता की सहायता नहीं करता। उस निर्णय में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि यद्यपि भारतीय आयकर अधिनियम में कोई ऐसा प्रावधान नहीं है जो धारा 23(3) के अधीन निर्धारण करने वाले आयकर अधिकारी पर करदाता को उस सामग्री को प्रकट करने का कर्तव्य अधिरोपित करे जिस पर वह कार्य करने का प्रस्ताव करता है, नैसर्गिक न्याय की अपेक्षा है कि वह करदाता का ध्यान उसकी ओर आकृष्ट करे और उसे यह दर्शाने का अवसर दे कि अधिकारी की सूचना गलत है और उसे अपने आदेश में वह सामग्री भी इंगित करनी चाहिए जिस पर उसने अपना आकलन किया है। यह निर्णय वास्तव में उत्तरदाता के विरुद्ध है और ऐसा कोई नियम नहीं बताता जो *ढाकेश्वरी कॉटन मिल्स' मामले* (2) में इस न्यायालय द्वारा व्यक्त अभिमतों के असंगत कहा जा सके।

लाहौर उच्च न्यायालय का *सेठ गुरमुख सिंह बनाम आयकर आयुक्त, पंजाब* (3) का निर्णय विशेष रूप से *ढाकेश्वरी कॉटन मिल्स' मामले* (2) में इस न्यायालय द्वारा अनुमोदित किया गया था। उस निर्णय में निर्धारित नियम ये थे: (1) भारतीय आयकर अधिनियम की धारा 23 की उप-धारा (3) के अधीन कार्यवाही करते समय, आयकर अधिकारी ऐसे साक्ष्य पर, जिसे वह असत्य मानता हो, निर्भर करने के लिए आबद्ध नहीं है जो करदाता द्वारा प्रस्तुत किया गया हो; (2) यदि वह करदाता द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य, चाहे मौखिक हो या दस्तावेजी, की उपेक्षा करते हुए आकलन करने का प्रस्ताव करता है, तो उसे न्यायोचितता से करदाता को वह सामग्री प्रकट करनी चाहिए जिस पर वह उस आकलन को आधारित करने जा रहा है; (3) वह, हालाँकि,

सूचना के निजी स्रोतों पर निर्भर करने से वंचित नहीं है, जिन स्रोतों को वह करदाता को बिल्कुल भी प्रकट नहीं कर सकता; और (4) यदि वह करदाता के विरुद्ध उसके द्वारा की गई किसी निजी जाँच के परिणाम का उपयोग करने का प्रस्ताव करता है, तो उसे करदाता को प्रस्तावित रूप से उपयोग की जाने वाली सूचना का सार उस सीमा तक सूचित करना होगा कि करदाता उस मामले के पूर्ण विवरण से अवगत हो जिसका सामना करने की उससे अपेक्षा की जाती है और उसे और यदि संभव हो तो इसका सामना करने का पर्याप्त अवसर देना चाहिए। यह निर्णय यह नहीं बताता कि आयकर अधिकारी के लिए शुद्ध अनुमान पर और उसके समक्ष किसी सामग्री या साक्ष्य के संदर्भ के बिना आकलन करना खुला है।

अंतिम निर्णय जिसका हमें संदर्भ दिया गया है, *मलिक दमसाज खान बनाम आयकर आयुक्त* (1) का निर्णय है। वह भी प्रिवी काउंसिल का निर्णय है। उस मामले में, भारतीय आयकर अधिनियम की धारा 23(3) के अधीन निर्धारण की वैधता को करदाता द्वारा चुनौती नहीं दी गई थी और अपील पूर्णतः निर्धारण की राशि की ओर निर्देशित थी। उनके महाशयों ने अभिमत व्यक्त किया:

"किन्तु उन्हें प्रतीत होता है कि वर्तमान मामले की परिस्थितियों में आयकर अधिकारी के लिए विवरणी को एक वैध विवरणी के रूप में स्वीकार करना और धारा 23(1) या धारा 23(3) के अधीन, जैसा भी मामला हो, निर्धारण के लिए अग्रसर होना स्पष्टतः सक्षम था। चूँकि वह संतुष्ट नहीं था कि विवरणी सही और पूर्ण थी, इसलिए वह धारा 23(1) के अधीन अग्रसर नहीं हो सकता था; अतः उसने, जैसा कि निर्धारण के मुखपृष्ठ पर प्रकट होता है, धारा 23(3) के अधीन अग्रसर हुआ। विवरणी की अपूर्णता में और न ही इस तथ्य में कि किसी संलग्न विवरण में अपीलकर्ता ने अपनी विवरणी को एक आकलन के रूप में संदर्भित किया, उनके महाशय इस तर्क के लिए कोई संभावित औचित्य नहीं पाते कि निर्धारण असक्षम था या कि अपीलीय

सहायक आयुक्त को उन अपील कार्यवाहियों का संज्ञान लेने का क्षेत्राधिकार नहीं था जो अपीलकर्ता ने स्वयं प्रारंभ की थीं।"

ये अभिमत किसी भी रूप से उत्तरदाता की सहायता नहीं करते; न ही वे *सेठ गुरमुख सिंह के मामले* (1) में निर्धारित नियमों के विरुद्ध कोई नियम बताते हैं।

इन कारणों से हम अभिनिर्धारित करते हैं कि उच्च न्यायालय ने उसे निर्देशित प्रश्न का उत्तर देने में त्रुटि की। अपील तदनुसार स्वीकार की जाती है और उच्च न्यायालय का निर्णय एवं आदेश निरस्त किया जाता है। उच्च न्यायालय को निर्देशित प्रश्न का उत्तर नकारात्मक में है। अपीलकर्ता इस न्यायालय में और उच्च न्यायालय में भी अपनी लागत प्राप्त करने का अधिकारी होगा।

अपील स्वीकार।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता । समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।